जलवायु परिवर्तन, मृदा गुणवत्ता एवं खाद्य सुरक्षा पर विचारोत्तेजक कार्यशाला

कार्यवृत्त एवं अनुशंसाएं

11 अगस्त, 2009
एन.ए.एस.सी. कॉम्प्लैक्स, पूसा परिसर
नई दिल्ली–110012

taas
Progress Through Science

ट्रस्ट फॉर एडवांसमेंट ऑफ एग्रीकल्चरल साइंसिस (टास)
एवेन्यू II, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली – 110 012

taas
Progress Through Science

ट्रस्ट फॉर एडवांसमेंट ऑफ एग्रीकल्चरल साइंसिस
(टास)

'टास' के प्रकाशनों की सूची

'टास' द्वारा आयोजित विभिन्न क्रियाकलापों के आधार पर निम्नलिखित प्रकाशन/रिपोर्टें प्रकाशित की गईं :

1. रेगुलेटरी मेजर्स फॉर यूटिलाइजिंग बायोटेक्नोलॉजिकल डेवलपमेंट्स इन डिफरेंट कंट्रीस – डॉ. मंजू शर्मा, सचिव, जैवप्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार द्वारा 17 अक्तूबर 2003 को दिया गया प्रथम स्थापना दिवस व्याख्यान
2. इनेब्लिंग रेगुलेटरी मैकेनिज्म्स फॉर रिलीज़ ऑफ ट्रांसजेनिक क्रॉप्स – विचारोत्तेजक सत्र, 18 अक्तूबर 2003
3. चैलेंजिज़ इन डेवलपिंग न्यूट्रिशनली इन्हांस्ड स्ट्रेस टोलरेंट जर्मप्लाज़्म – डॉ. एस. के. वासल, लब्धप्रतिष्ठ वैज्ञानिक, 'सीमिट', मैक्सिको द्वारा 15 जनवरी 2004 को दिया गया विशेष व्याख्यान
4. रोल ऑफ साइंस एंड सोसायटी टुवर्ड्स प्लांट जेनेटिक रिसोर्सिस मैनेजमेंट – इमर्जिंग इश्यूज – विचारोत्तेजक सत्र, 7–8 जनवरी 2005, मुख्य मुद्दे और अनुशंसाएं
5. रोल ऑफ इन्फॉरमेशन, कम्युनिकेशन टैक्नालॉजी इन टेकिंग साइंटिफिक नॉलेज/टैक्नोलॉजिस टू द एंड यूजर्स – राष्ट्रीय कार्यशाला, 10–11 जनवरी 2005, अनुशंसाएं
6. पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप इन एग्रीकल्चरल बायोटैक्नोलॉजी – द्वितीय स्थापना दिवस व्याख्यान, व्याख्यानदाता – डॉ. गुरदेव एस. खुश, एडजंक्ट प्रोफेसर, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया, डेविस, यूएसए, 17 अक्तूबर 2005
7. कृषि में नेतृत्व के लिए दिया गया प्रथम डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन पुरस्कार, 15 मार्च 2005 – मुख्य मुद्दे
8. फार्मर – लेड इनोवेशंस फॉर इन्क्रीज्ड प्रोडक्टिविटी, वैल्यू एडीशन एंड इनकम जेनरेशन – विचारोत्तेजक सत्र, 17 अक्तूबर 2005 – मुख्य मुद्दे तथा अनुशंसाएं
9. स्ट्रेटजी फॉर इन्क्रीसिंग प्रोडक्टिविटी ग्रोथ रेट इन एग्रीकल्चरल – डॉ. आर. एस. परोदा द्वारा अगस्त 2006 में प्रस्तुत रणनीतिपरक पत्र
10. कृषि में नेतृत्व के लिए द्वितीय डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन पुरस्कार, 9 अक्तूबर 2006 – एक संक्षिप्त रिपोर्ट
11. फार्मर–लैड इनोवेशंस टुवर्ड्स प्लांट वैराइटी इम्प्रूवमेंट, कंजर्वेशन एंड प्रोटेक्टिंग फार्मर्स राइट्स, 12–13 नवम्बर 2006, राष्ट्रीय संवाद, मुख्य मुद्दे तथा अनुशंसाएं
12. "मॉडल्स ऑफ पब्लिक–प्राइवेट पार्टनरशिप इन एग्रीकल्चरल बायोटैक्नोलॉजी" पर 7 अप्रैल 2007 को आयोजित विचारोत्तेजक सत्र – मुख्य मुद्दे तथा अनुशंसाएं
13. 'फार्मर लैड इनोवेशंस फार सस्टेनेबल एग्रीकल्चर' पर 14–15 दिसम्बर 2007 को आयोजित संगोष्ठी – कार्यवृत्त
14. भारत में नागरीय राष्ट्रीय सुरक्षा तथा कुक्कुट क्षेत्र के विकास हेतु गुणवत्तापूर्ण प्रोटीन वाली मक्का पर राष्ट्रीय संगोष्ठी तथा कृषि में नेतृत्व के लिए तृतीय डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन पुरस्कार का प्रदानीकरण, 3 मई 2008 – कार्यवृत्त तथा मुख्य मुद्दे
15. नीति परिवर्तन, संस्थागत नवाचार और विज्ञान के माध्यम से विश्व खाद्य व कृषि संकट से निपटना – डॉ. ज्वाचिम वॉन ब्राउन, डायरेक्टर जनरल, इंटरनेशनल फूड पॉलिसी रिसर्च इंस्टीट्यूट, वाशिंगटन द्वारा 6 मार्च 2009 को दिया गया चतुर्थ स्थापना दिवस व्याख्यान
16. 'भारतीय कृषि के समक्ष उभरती चुनौतियां – भावी पथ' विषय पर विचारोत्तेजक सत्र, 6 मार्च 2009, कार्यवृत्त तथा अनुशंसाएं
17. फार्म पशु आनुवंशिक संसाधनों के संरक्षण के लिए रणनीति पर विचारोत्तेजक कार्यशाला, 10–12 अप्रैल 2009 – रांची घोषणा
18. मिलियंस फैड – प्रोवेन सक्सेसिस इन एग्रीकल्चरल डेवलपमेंट, 19 जनवरी 2010 (इफप्री, अनारी तथा टास द्वारा संयुक्त रूप से आयोजित)
19. 'जलवायु परिवर्तन, मृदा गुणवत्ता एवं खाद्य सुरक्षा' पर विचारोत्तेजक कार्यशाला, 11 अगस्त 2009 – कार्यवृत्त एवं अनुशंसाएं

जलवायु परिवर्तन, मृदा गुणवत्ता एवं खाद्य सुरक्षा पर विचारोत्तेजक कार्यशाला

कार्यवृत्त एवं अनुशंसाएं

11 अगस्त 2009
एनएएससी काम्प्लैक्स, पूसा परिसर
नई दिल्ली–110012

taas
Progress Through Science

ट्रस्ट फॉर एडवांसमेंट ऑफ एग्रीकल्चरल साइंसिस (टास)
एवेन्यू–II, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली–110 012

विषय–सूची

प्रस्तावना	1
उद्‌घाटन सत्र	2
मुख्यशोध पत्र	3
परिचर्चा	13
अनुशंसाएं	14

जलवायु परिवर्तन, मृदा गुणवत्ता एवं खाद्य सुरक्षा पर विचारोत्तेजक कार्यशाला

कार्यवृत्त

प्रस्तावना

1960 तथा 1970 के दशक में हुई हरित क्रांति से विश्व में लाखों लोगों को भूख से बचाने में सफलता मिली थी और यह घटना 20वीं सदी की प्रमुख सफलताओं में से एक है। भारत में खाद्यान्न उत्पादन, जो 1955 में 5.90 करोड़ टन था, 2008 में बढ़कर 23.10 करोड़ टन हो गया, जबकि इसी अवधि में जनसंख्या 40 करोड़ से बढ़कर 113.7 करोड़ हो गई। स्पष्ट है कि प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उत्पादन, जनसंख्या वृद्धि की तुलना में, अधिक बना रहा। फसल उपज में उल्लेखनीय वृद्धि तथा प्रति व्यक्ति खाद्य की उपलब्धता में बढ़ोतरी के बावजूद भारतीय कृषि के समक्ष अब और भी बड़ी चुनौतियां हैं। 21वीं सदी में सबसे प्रमुख चुनौती, कम होते हुए प्राकृतिक संसाधनों के चलते तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या को भोजन उपलब्ध कराना है। इसके साथ ही जलवायु परिवर्तन से संबंधित समस्याएं भी बढ़ती जा रही हैं।

विश्व ऊष्मन और इससे संबंधित जलवायु परिवर्तनों का कृषि पर अनेक प्रकार से प्रभाव पड़ रहा है जिससे हमारी राष्ट्रीय तथा वैश्विक खाद्य सुरक्षा भी गंभीर रूप से प्रभावित हो रही है। इसके साथ ही कृषि से संबंधित कार्यों का भी जलवायु परिवर्तन पर उल्लेखनीय प्रभाव पड़ रहा है और ऐसा कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2), मीथेन (CH_4) व नाइट्रस ऑक्साइड (N_2O) जैसी ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन तथा भूमि उपयोग की पद्धति में परिवर्तन के कारण हो रहा है। वनों की कटाई, रेगिस्तानों का फैलना और जीवाश्म ईंधनों का उपयोग कार्बन डाइऑक्साइड – उत्सर्जन के प्रमुख स्रोत हैं, जबकि मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड जैसी गैसों के उत्सर्जन का मुख्य कारण कृषि है।

एशिया के देशों से, विश्व में उत्सर्जित की जाने वाली कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) की कुल मात्रा का, लगभग 26 प्रतिशत भाग उत्सर्जित होता है और ऐसा अनुमान है कि वर्ष 2030 तक यह बढ़कर लगभग 50 प्रतिशत हो जाएगा। इससे विश्वव्यापी चिंता उत्पन्न हुई है और यह आवश्यक हो गया है कि जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि को होने वाले खतरों से बचाने के

लिए तथा निकट भविष्य में मृदा और जल की उत्पाद व क्षमता को बनाए रखने के लिए उचित रणनीतियां विकसित की जाएं। नए उपायों के अंतर्गत इन चुनौतियों से निपटने के लिए हमें कृषि अनुसंधान की दिशा पुनः तय करनी होगी तथा निर्धनता, भूख और कुपोषण को कम करने के लिए मिलेनियम विकास के लक्ष्यों या मिलेनियम डेवलपमेंट गोल्स (एम.डी.जीएस.) को पूरा करना होगा।

उपरोक्त चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए, जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में खाद्य सुरक्षा और मृदा गुणवत्ता पर गंभीर चिंतन के लिए ट्रस्ट फॉर एडवांसमेंट ऑफ एग्रीकल्चरल साइंसिस (टास) ने एक विचारोत्तेजक कार्यशाला का आयोजन किया। इसका मुख्य उद्देश्य खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने हेतु तत्काल कार्यान्वयन की दृष्टि से जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए कार्यशील रणनीति का पता लगाकर उसे लागू करना है। इस कार्यशाला में राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों से अग्रणी कृषि विशेषज्ञों के चुने हुए दल ने भाग लिया जिसमें नीति निर्माता, वैज्ञानिक, कार्पोरेट क्षेत्र के अग्रणी जन, वित्तीय संस्थाएं और कृषक समुदाय तथा समाज का प्रतिनिधित्व करने वाले संगठन शामिल थे।

उद्घाटन सत्र

उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन ने और सह अध्यक्षता डॉ. आर. एस. परोदा ने की। डॉ. परोदा ने डॉ. स्वामीनाथन तथा अन्य प्रतिनिधियों का हार्दिक स्वागत किया। उन्होंने इस विचारोत्तेजक कार्यशाला के महत्व और उद्देश्यों पर प्रकाश डाला। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि 21वीं सदी में विश्व समुदाय के समक्ष मुख्य चुनौतियां हैं : तेजी से बढ़ती हुई वैश्विक जनसंख्या, कृषि भूमि तथा अन्य प्राकृतिक संसाधनों का अपघटन तथा वातावरण में ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन जिससे जलवायु परिवर्तन हो रहा है। उन्होंने यह भी कहा कि विगत में हुई उल्लेखनीय उपलब्धियों के बावजूद भारतीय कृषि के समक्ष वर्तमान में अनेक चुनौतियां हैं। खाद्य सुरक्षा की चुनौती से निपटने, प्राकृतिक संसाधनों के अपघटन को रोकने तथा जलवायु परिर्वतन के प्रतिकूल प्रभाव का नियंत्रण करने जैसी चुनौतियों से निपटने की आवश्यकता है, ताकि प्रति वर्ष 4 प्रतिशत की वृद्धि दर का लक्ष्य प्राप्त किया जा सके। उन्होंने कहा कि वास्तव में भारतीय कृषि वर्तमान में एक चौराहे पर खड़ी है। इस बात पर बल दिया गया कि वर्तमान चुनौतियों, विशेषकर जलवायु परिवर्तन, मृदा गुणवत्ता और खाद्य सुरक्षा से प्राथमिकता के आधार पर निपटने और विकास के नए अवसरों का लाभ उठाने के लिए उचित रणनीतियां और नीतियां तैयार करने की आवश्यकता है। इसी संदर्भ में इस विचारोत्तेजक कार्यशाला का आयोजन डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन की अध्यक्षता में किया गया है जिसमें विभिन्न प्रमुख पणधारी (स्टेकहोल्डर्स) भाग ले रहे हैं।

एम. एस. स्वामीनाथन रिसर्च फाउंडेशन के अध्यक्ष और राज्य सभा के सदस्य डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन ने अपने उद्घाटन भाषण में कहा कि भारतीय कृषि पर जलवायु परिवर्तन के संभावित प्रतिकूल प्रभाव के कारण निर्धनों तथा अल्प साधन सम्पन्न लोगों पर खाद्य असुरक्षा का खतरा मंडरा रहा है जिसके और अधिक गहन होने की संभावना है। जलवायु परिवर्तन वह खतरा है जिसका हम सभी आज सामना कर रहे हैं और इस वर्ष मानसूनी वर्षा का असामान्य व्यवहार इसका स्पष्ट उदाहरण है। डॉ. स्वामीनाथन ने दूसरी हरित क्रांति पर बल दिया और कहा कि यह क्रांति प्राकृतिक संसाधनों को टिकाऊ रखते हुए खाद्य सुरक्षा प्राप्त करने के लिए पादप जीनप्ररूपों और फसल प्रबंधन संबंधी क्रियाविधियों के समेकन के माध्यम से ही हो सकती है। वर्तमान चुनौतियों के असंख्य होने के कारण विश्व समुदाय ने अनेक चर्चाओं और विचार–विमर्शों के माध्यम से इन चुनौतियों से निपटने की पहल की है। इस संदर्भ में 'टास' द्वारा इस विचारोत्तेजक कार्यशाला के आयोजन की पहल करना वास्तव में एक सामयिक कदम है।

मुख्यशोध पत्र

कार्बन प्रच्छादन (सीक्वेस्ट्रेशन) और जलवायु परिवर्तन के विशेषज्ञ तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के ओहियो स्टेट यूनिवर्सिटी में कार्बन मैनेजमेंट एंड सीक्वेस्ट्रेशन सेंटर के निदेशक प्रो. रतन लाल ने 'गर्म होती हुई जलवायु तथा घटते हुए संसाधनों के लिए मृदा प्रतिस्थित्व (रेज़िलिएंस) प्रबंधन' पर अपना मुख्यशोध पत्र प्रस्तुत किया। प्रो. लाल ने बताया कि भारतीय कृषि की उपलब्धियां, 20वीं सदी के दूसरे उतरार्द्ध के दौरान, विश्व स्तर की सफलता की प्रमुख कहानियों में से एक रही हैं। वर्ष 1955 से 2008 के दौरान भारत में खाद्यान्न का उत्पादन 5.9 करोड टन से बढ़कर 23.10 करोड़ टन हो गया और जनसंख्या 40 करोड़ से बढ़कर 113.70 करोड़ हो गई। स्पष्ट है कि प्रति व्यक्ति खाद्यान्न की उपलब्धता जनसंख्या वृद्धि से अधिक रही। तथापि, अब हमारे सामने और भी बड़ी चुनौतियां हैं क्योंकि अनुमान है कि 2050 में भारत की जनसंख्या 175 करोड़ हो जाएगी और प्रति व्यक्ति भूमि की उपलब्धता मात्र 0.089 हैक्टर होगी तथा ताजे जल की आपूर्ति केवल 1190 $मी^3$/वर्ष रह जाएगी। यह समस्या संभावित जलवायु परिवर्तन, मृदा अपघटन और रेगिस्तानों के विस्तार, शहरीकरण और तेजी से बढ़ते औद्योगिकीकरण के कारण और भी गंभीर होने की संभावना है। इससे निपटने के लिए हमें वर्ष 2050 तक खाद्यान्न उत्पादन दोगुना करना होगा। हमें गेहूं का उत्पादन, जो 2008 में 7.80 करोड़ टन था, 2020 में 10.90 करोड़ टन करना होगा। सिंचित क्षेत्र को भी दुगना करना होगा, जो 2000 में 5.70 करोड़ हैक्टर था, उसे 2050 तक बढ़ाकर 11.40 करोड़ हैक्टर की सर्वोच्च क्षमता तक लाना होगा। उर्वरकों के उपयोग में भी दुगनी वृद्धि करनी होगी। वर्तमान में उर्वरक उपयोग की दर 107 कि.ग्रा./है. है जिसे बढ़ाकर लगभग 200 कि.ग्रा./है. करना होगा। इसके साथ ही उर्वरकों, जल तथा अन्य बाहरी निवेशों के उपयोग की दक्षता बढ़ाना भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

प्रो. लाल ने इस बात पर बल दिया कि भारत में भूमि और जल संसाधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं, अनुसंधान आधार सबल है, उच्च स्तर के प्रशिक्षित व्यवसायविद हैं और इन सब से बढ़कर परिश्रमी किसान हैं। इसलिए हमारा देश मृदा और जल जैसे संसाधनों की गुणवत्ता सुधारते हुए खाद्यान्नों की भावी मांग को पूरा करने तथा परिवर्तित होती हुई जलवायु के अनुकूल कृषि को ढालने का लक्ष्य प्राप्त करने में समर्थ है। तथापि, भविष्य में हमारा खाद्य उत्पादन उन्नत मृदा आधारित प्रणालियों के उपयोग के साथ–साथ श्रेष्ठ जननद्रव्य के उपयोग से ही बढ़ाया जा सकता है। अतः हमें निम्न पांच रणनीतियों पर विशेष ध्यान देना होगा : (i) मृदा और वनस्पतियों में कार्बन (C) पूलों को बढ़ाकर, अन्य फार्म जिंसों के समान ट्रेड C क्रेडिटों को अपनाकर तथा किसानों के लिए आय के अन्य साधनों का सृजन करके अपघटित मृदाओं और पारिस्थितिक प्रणालियों को फिर से सुधारना; (ii) उर्वरकों, जल तथा अन्य निवेशों के उपयोग की दक्षता बढ़ाना; (iii) मृदा/पारिस्थितिक प्रणालियों/सामाजिक प्रतिस्थित्व (रेजिलिएंस) में सुधार; (iv) पारिस्थितिक प्रणाली (पर्यावरणीय) संबंधी सेवाओं को बनाए रखने के लिए कृषकों को प्रोत्साहन देना; तथा (v) भूमि संरक्षण संबंधी प्रौद्योगिकियों को अपनाना। प्रो. लाल का मानना था कि इसके लिए अपनाई जाने वाली रणनीति 'सीखने और परिवर्तन' की होनी चाहिए। तथापि, मुख्य प्रश्न यह है कि मृदा/पारिस्थितिक प्रणाली को सबल बनाने तथा सामाजिक प्रतिस्थितित्व लाने के लिए हम अवसरों का लाभ किस प्रकार उठा सकते हैं तथा इस विषय में अपने साथियों को किस प्रकार और ज्ञान दे सकते हैं। प्रतिस्थितित्व की अवस्था प्राप्त कर लेना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि इसे बनाए रखना भी बहुत आवश्यक है।

अतः, भूमि उपयोग तथा मृदा प्रबंधन प्रणालियां इस प्रकार की होनी चाहिए कि उनसे मृदा गुणवत्ता संबंधी 4 प्रमुख घटकों (उदाहरणतः भौतिक, रासायनिक, जीवविज्ञानी और जलदाबविज्ञानी) को सुधारकर प्राकृतिक/मानवीय क्रियाओं के द्वारा मृदा की धारण क्षमता को बढ़ाया जा सके। मृदाओं का प्रतिस्थितित्व बढ़ाने के लिए उनकी गुणवत्ता को सुधारना और उसे बनाए रखना आवश्यक है और परिवर्तित होती जलवायु के संदर्भ में खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है। प्रो. लाल ने अपने शोध पत्र का समापन इस विचार के साथ किया कि मृदा संसाधनों को हमेशा सुनिश्चित नहीं मान लेना चाहिए; हमें अपनी भावी पीढ़ियों की सुरक्षा के लिए इसका उपयोग संतुलित ढंग से करना चाहिए और इसे सुधारने के प्रयास लगातार करते रहना चाहिए।

डॉ. जे. एस. सामरा, मुख्य कार्यपालक अधिकारी, राष्ट्रीय बारानी क्षेत्र प्राधिकरण ने 'बारानी क्षेत्रों में उन्नत उत्पादकता हेतु मृदा प्रबंधन की रणनीतियां' विषय पर दिए गए अपने प्रस्तुतीकरण में इस बात पर बल दिया कि जलवायु, मृदा, सिंचाई, उन्नत निवेश, प्रौद्योगिकी हस्तक्षेप जैसे संसाधन, खाद्य सुरक्षा, राट्रीय एकता तथा सार्वभौमिकता को बनाए रखने के प्रमुख साधन हैं।

उन्होंने बल दिया कि वैश्विक ऊष्मन तथा जलवायु परिवर्तन तथा अन्य संसाधनों के साथ इसकी अंतरक्रिया, जन–सामान्य की आजीविका पर इनका प्रभाव तथा पारिस्थितिक प्रणालियों का टिकाऊपन जैसे विषय अनुसंधानकर्ताओं, नीतिकारों, प्रशासकों तथा स्वतंत्र चिंतकों की चिंता का प्रमुख विषय हैं। असामान्य वर्षा जिसके कारण सूखा और बाढ़ की स्थितियां उत्पन्न होती हैं, गर्मी और सर्दी, ओलावृष्टि, झंझावत, चक्रवात/अति चक्रवात, बाढ़ प्रवण क्षेत्रों में सूखा और सूखा प्रवण क्षेत्रों में बाढ़, जैसी असामान्य मौसम संबंधी घटनाओं का बार–बार घटना और इनकी तीव्रता विश्व ऊष्मन को बढ़ाने के कुछ प्रमुख कारण हैं। जलवायु परिवर्तन की जटिल गतिकी तथा प्राकृतिक संसाधनों व सामाजिक पूंजी के साथ इसकी अंतरक्रिया से ये चुनौतियां और भी गंभीर हो गई हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हम इन चुनौतियों को अवसर में बदलें। इस संदर्भ में 2009 में हुई कम वर्षा एक ऐसा विशिष्ट उदाहरण है जिसके लिए हमें नए और संभावित हल खोजने होंगे। डॉ. सामरा ने 2009 में हुई मानसूनी वर्षा की कुछ उन विशिष्टताओं पर प्रकाश डाला जो नीति संबंधी पहल की दृष्टि से विशेष ध्यान देने योग्य हैं, ये हैं :

1. भारत के दक्षिणी भागों में मानसूनी वर्षा जल्दी पहुंचती है लेकिन उत्तर की ओर इसके बढ़ने में लगभग दो सप्ताह की देरी होती है। अधिक वर्षा वाले झारखंड और हिमाचल प्रदेश जैसे राज्यों में कम वर्षा की स्थिति में इन राज्यों के प्रमुख जलाशयों में कम पानी भरा जिसके परिणामस्वरूप जल विद्युत का उत्पादन कम हुआ तथा नहर और सतही जल से कम सिंचाई हुई। ये इस मानसून की प्रमुख विशेषताएं रहीं।

2. उच्च तापमान और निम्न आर्द्रता से संबंधित अल्पतापीयता (हाइपरथर्मिया), क्षणिक (एफिमेरल) ज्वर, आदि जैसे पशुओं के रोग भारत के विभिन्न भागों से रिपोर्ट किए गए। चारे की कम उत्पादकता तथा हाइड्रोसियानिक अम्लों (एचसीएन), नाइट्रेटों, नाइट्राइटों, अनिवार्य तत्वों की न्यून सांद्रता के कारण चारे की गुणवत्ता में गिरावट तथा निम्न पाचनशीलता सूखे के प्रतिकूल प्रभावों के कुछ अन्य उदाहरण हैं।

3. पहले राज्यों द्वारा 'काम के बदले अनाज' की मांग की जाती थी लेकिन इस वर्ष पहली बार राज्यों ने बिजली तथा डीज़ल पर अनुदान की मांग की जिससे इस तथ्य की पुष्टि हुई कि सूखे से निपटने के लिए भूजल के उपयोग पर ध्यान दिया जा रहा है। इसके अतिरिक्त चावल की खेती वाले क्षेत्र में लगभग 60 लाख हैक्टर की और मूंगफली की खेती वाले क्षेत्र में लगभग 10 लाख हैक्टर की कमी देखी गई।

इन प्रतिकूल प्रभावों से निपटने के लिए निम्नलिखित रणनीतियां प्रस्तावित की गईं :

1. वर्षा की कमी के कारण चावल, मूंगफली और चारों के उत्पादन में हुई कमी को सामान्य वर्षा वाले क्षेत्रों में उत्पादन के गहनीकरण द्वारा दूर किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त

कम जोखिम वाले क्षेत्रों में बोड़ो चावल, शरद ऋतु की मक्का, रबी/ग्रीष्म ज्वार तथा मूंगफली की गहन खेती भी की जा सकती है।

2. नहर द्वारा सिंचाई को पुनरानुसूचित करने, भूजल के उपयोग के लिए बिजली की निरंतर आपूर्ति तथा लेज़र भूमि समतलन, सूक्ष्म सिंचाइयों (स्प्रिंकलर, ड्रिप प्रणाली तथा फर्टिगेशन) जैसी जल बचाने वाली प्रौद्योगिकियों को अपनाने और चावल की सीधी बिजाई जैसी तकनीकों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इन्हें अपनाए जाने के लिए नीतिगत सहायता उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

3. उत्तर–पश्चिमी भारत में चावल अपशिष्ट को जला दिया जाता है जिसे खेत की मिट्टी में दबाकर गैर–जुताई प्रणाली को अधिक से अधिक अपनाया जाना चाहिए। साथ ही, चारा बैंकों की स्थापना करके चारा आपूर्ति सुनिश्चित की जानी चाहिए।

डॉ. आई. पी. एब्रोल, निदेशक, टिकाऊ कृषि प्रगत केंद्र (सैंटर फॉर एडवांसमेंट ऑफ सस्टेनेबल एग्रीकल्चर) ने 'संरक्षण कृषि – मृदा स्वास्थ्य, जलवायु परिवर्तन तथा खाद्य सुरक्षा की उभरती समस्याओं से निपटना' विषय पर प्रस्तुत किए गए अपने शोध पत्र में प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन संबंधी परिदृश्य का विवरण प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि यह तथ्य सर्वविदित है कि भारतीय कृषि को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। तथापि, जिन चुनौतियों से निपटा जाना है उनकी प्रकृति, तीव्रता और जटिलता पर पिछले 2–3 वर्षों से उच्च स्तर पर (राष्ट्रीय विकास परिषद, योजना आयोग तथा कृषक आयोग की रिपोर्ट) लगातार चर्चा हो रही है और अब हम इनको मोटे तौर पर भली प्रकार समझ चुके हैं। ये चुनौतियां हैं : (i) उत्पादकता वृद्धि का ठहर जाना, (ii) भूमि और जल का व्यापक अपघटन तथा इनका अन्य कार्यों के लिए उपयोग, (iii) बारानी कृषि तथा छोटे किसानों की उत्पादन एवं आय संबंधी असामान्यताओं में वृद्धि तथा (iv) जलवायु परिवर्तन।

वर्तमान संकट से निपटने के लिए भारत सरकार ने अनेक कदम उठाए हैं (राष्ट्रीय कृषि विकास योजना, राष्ट्रीय नवोन्मेषी कृषि परियोजना, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन, राष्ट्रीय बारानी क्षेत्र प्राधिकरण आदि की स्थापना/गठन)। तथापि, योजना आयोग ने स्पष्ट रूप से इस तथ्य को पहचाना है कि वृद्धि से संबंधित सर्वाधिक प्रमुख सीमाकारी घटक 'प्रौद्योगिकीय थकान' है तथा आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा प्रणाली को इस प्रकार रूपांतरित किया जाए कि वह इन महत्वपूर्ण समस्याओं से निपटने में और अधिक प्रभावी सिद्ध हो सके। डॉ. एब्रॉल ने इस तथ्य पर बल दिया कि इन प्रमुख समस्याओं का हल खोजने के लिए हमें वर्तमान 'जिंस केन्द्रित' दृष्टिकोण से हटकर 'कृषक केंद्रित' (फार्मिंग) प्रणाली आधारित दृष्टिकोण अपनाना होगा। हमें ऐसी स्पष्ट रणनीति अपनाने की आवश्यकता है जिसमें तय की

गई प्राथमिकताओं के अनुसंधान एजेंडे (अपनाने के लिए उपयुक्त, व्यावहारिक, रणनीतिपरक/मौलिक अनुसंधान) पर आधारित विभिन्न अनुसंधान संगठनों को निश्चित उत्तरदायित्व सौंपे जा सकें। हमें ऐसी क्रियाविधियां विकसित करनी होंगी जिनसे नई प्रौद्योगिकियों का बड़े पैमाने पर परीक्षण, परिशोधन और अनुकूलन करके उन्हें व्यापक स्तर पर अपनाया जा सके। इसके लिए हमें सभी पणधारियों (स्टेकहोल्डर्स) को सम्मिलित करते हुए अनुसंधान–विस्तार–कृषक संबंधों व सम्पर्कों को सबल बनाना होगा।

संरक्षण कृषि के महत्व पर बल देते हुए डॉ. एब्रॉल ने कहा कि यह वह संकल्पना है जिसका विकास वैश्विक स्तर पर कृषि के टिकाऊपन संबंधी चिंताओं के कारण हुआ है। इस संकल्पना में क्षेत्र/स्थान विशिष्ट प्रौद्योगिकियों तथा प्रथाओं में तीन मूल सिद्धांतों को लागू किया गया है और इसे किसानों की समस्याओं को हल करने का सशक्त साधन माना गया है। ये तीन सिद्धांत हैं : (क) फसलें उगाने की ऐसी प्रणालियां विकसित करना और उन्हें बढ़ावा देना जिनके कारण मृदा में सबसे कम व्यवधान उत्पन्न होता है (जैसे शून्य जुताई); (ख) खेत की सतह पर फसल अपशिष्टों को छोड़ने तथा आवरण फसलें उगाने आदि जैसी विधियों को अपनाकर मिट्टी की ऊपरी सतह को ढककर रखना; और (ग) फसल चक्रण, अंतर खेती, कृषि वानिकी आदि के माध्यम से विविधीकृत फसल क्रम को बढ़ावा देना। ऐसे पर्याप्त वैज्ञानिक प्रमाण उपलब्ध हैं जो यह दर्शाते हैं कि इन सिद्धांतों पर आधारित कृषि कार्यों को जब समेकित रूप में अपनाया जाता है तो जलसंभर विकास के संदर्भ में ये सिद्धांत दीर्घावधि समय में जिन पहलुओं में योगदान देते हैं, वे हैं : (i) टिकाऊ उत्पादकता में वृद्धि, (ii) भूमि तथा जल अपघटन की क्रिया को रोकना, (iii) मृदा स्वास्थ्य तथा गुणवत्ता में सुधार, (iv) जैव–विविधता में वृद्धि, (v) ग्रीन हाउस गैसों से निपटने की क्षमता में वृद्धि तथा जलवायु परिवर्तन से निपटना और (vi) टिकाऊ कृषि विकास के लिए पारिस्थितिक नींव को सुदृढ़ बनाना।

डॉ. एब्रॉल ने इस तथ्य पर भी बल दिया कि संरक्षण कृषि से ऐसे अवसर उत्पन्न होते हैं जिनसे प्रौद्योगिकियों के विकास और परिशोधन, सुदृढ़ अनुसंधान–कृषक–विस्तार संबंध स्थापित करने और प्रौद्योगिकी सृजन तथा उसे अपनाने हेतु संस्थागत तथा नीति संबंधी परिवर्तन सुनिश्चित करने के लिए किसानों के ज्ञान और अनुभव का उपयोग करने में सहायता मिलती है। संरक्षण कृषि ने वैश्विक स्तर पर अच्छी प्रगति की है और इसे दक्षिण तथा उत्तर अमेरिका में 10.8 करोड़ से अधिक उस क्षेत्र में अपनाया जा रहा है जहां भूमि अपघटन की गंभीर समस्याएं हैं। भारत में 'चावल–गेहूं कंसोर्टियम' के प्रयासों से इस दिशा में अच्छी शुरूआत हुई है। अब इसे प्राथमिकता वाली उत्पादन प्रणालियों के लिए 'संरक्षित कृषि अनुकूलन अनुसंधान एवं नीति कार्यक्रम' में उचित स्थान देते हुए राष्ट्रीय अनुसंधान एवं विकास के एजेंडे की मुख्य धारा में शामिल किया जाना चाहिए और यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि क्षेत्रीय केंद्रों के साथ राज्य कृषि

विश्वविद्यालयों के प्रमुख परिसरों तथा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के संस्थानों के बीच उचित सम्पर्क स्थापित हो और इसके साथ ही फील्ड एजेंसियों से भी बेहतर सम्पर्क बने। संरक्षण कृषि संबंधी कार्यक्रमों के लिए और अधिक सामाजिक–आर्थिक तथा नीति संबंधी अनुसंधान (निगरानी, मूल्यांकन); स्थानीय संसाधनों की समझ तथा उन पर स्थानीय लोगों की निर्भरता; फार्म यंत्रों के विकास; भागीदारी वाली फार्मिंग प्रणाली अनुसंधान; तथा वैश्विक स्तर पर श्रेष्ठ संस्थाओं के साथ पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता होगी। अपने शोध पत्र का समापन करते हुए डॉ. एब्रॉल ने यह रेखांकित किया कि नई पीढ़ी की प्रौद्योगिकियों के लिए ज्ञान के आधार को उपलब्ध कराने हेतु भारत की कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा प्रणाली की क्षमता, मुख्य रूप से प्रणाली की नई चुनौतियों का सामना करने की क्षमता, पर निर्भर करती है।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के राष्ट्रीय प्राध्यापक डॉ. पी. के. अग्रवाल ने भारतीय कृषि पर वैश्विक जलवायु परिवर्तन के प्रभावों पर अपना शोध पत्र प्रस्तुत किया। 'जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूलन तथा मृदा स्वास्थ्य सुधार' विषय पर अपने शोध पत्र में उन्होंने इस तथ्य पर प्रकाश डाला कि भारतीय कृषि में जलवायु संबंधी समस्याएं अब बहुत सामान्य हो गई हैं क्योंकि देश की 66 प्रतिशत कृषि योग्य भूमि बारानी है जहां सूखा पड़ना आम बात है। पिछले 130 वर्षों के दौरान हमें 26 सूखों का सामना करना पड़ा जिनमें 1987 और 2002 में पड़े सूखे बहुत गंभीर थे। सिंचाई जिसे सूखा रोधी या सूखे से बचाव का उपाय माना जाना चाहिए, वह भी मानसून पर निर्भर है। जलवायु परिवर्तन के कारण होने वाले मौसम संबंधी अन्य उतार–चढ़ावों में पूर्वी भारत में बार–बार आने वाली बाढ़, उत्तर–पश्चिमी भारत में पड़ने वाला पाला, पूर्वी तटवर्ती क्षेत्र में चक्रवात तथा गर्मी की स्थितियां प्रमुख हैं। हाल के वर्षों में जलवायु संबंधी समस्याओं के कारण होने वाली क्षतियों को आंकते हुए यह देखा जा सकता है कि 2002 में पड़े गंभीर सूखे के कारण खाद्यान्न उत्पादन में 2.9 करोड़ टन की कमी आई, जबकि जनवरी 2003 में चली शीत लहर के कारण आम, पपीता, केला, बैंगन तथा टमाटर में कम फलत हुई और आलू, ग्रीष्मकालीन मक्का तथा बोड़ो चावल की पैदावार घटी। इसी प्रकार, मार्च 2004 में चलने वाली लू या गर्म हवाओं के परिणामस्वरूप गेहूं के उत्पादन में 40 लाख टन की क्षति हुई और सरसों, मटर, अलसी, सब्जियों और फलों की उपज में भी बहुत नुकसान हुआ। इससे यह पता चलता है कि वैश्विक ऊष्मन से जुड़ी जलवायु संबंधी समस्याएं बढ़ती जा रही हैं।

ऐसा अनुमान है कि 2100 तक अनाज की उत्पादकता में 10–40 प्रतिशत की कमी आएगी। यदि हमने जलवायु परिवर्तन के प्रति उपयुक्त उपाय नहीं अपनाए तो तापमान में 1° से. की वृद्धि से गेहूं के वार्षिक उत्पादन में 40–50 लाख टन की कमी होने की संभावना है। तापमान में अनुमानित वृद्धि तथा जलवायु संबंधी अन्य परिस्थितियों में परिवर्तन के परिणामस्वरूप खाद्योत्पादन में बहुत अस्थिरता आएगी तथा इससे राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा और किसानों की आजीविका के लिए

गंभीर खतरा उत्पन्न होगा। पर्यावरण को बिना कोई क्षति पहुंचाए बढ़ती हुई खाद्यान्न की मांग को पूरा करने के लिए पर्याप्त खाद्यान्न का उत्पादन एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। यह चुनौती तब और भी गंभीर हो जाती है जब हम यह देखते हैं कि प्राकृतिक संसाधन सिकुड़ रहे हैं तथा पूरे विश्व की जलवायु परिवर्तित हो रही है। इससे निपटने के लिए हमें और अधिक अनुकूलन तथा परिस्थिति अनुकूल अनुसंधान, क्षमता निर्माण, स्थितियों के अनुकूल परिवर्तित नीतियों, क्षेत्रीय सहयोग और वैश्विक संसाधनों को पूल करने की आवश्यकता होगी। कुछ साधारण विधियों; जैसे – रोपाई की तिथियों में परिवर्तन तथा फसल किस्मों में स्थितियों के अनुसार बदलाव के द्वारा जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से काफी हद तक बचा जा सकता है। उचित प्रौद्योगिकियां विकसित करने तथा जलवायु संबंधी समस्याओं से निपटने में किसानों की क्षमता का निर्माण करने के लिए अतिरिक्त नीतियों की आवश्यकता होगी। अनुकूलन तथा प्रतिकूल स्थितियों का सामना करने के लिए जिन रणनीतियों पर विशेष बल दिया गया, वे हैं :

1. मौसम संबंधी सूचना उपलब्ध कराकर जिसमें समय रहते चेतावनी; फसल बीमा; फसल नाशकजीवों से चौकसी; और खाद्यान्न, चारा तथा बीज बैंकों में सामुदायिक साझीदारी जैसे पहलू भी सम्मिलित हों, जलवायु संबंधी वर्तमान समस्याओं से निपटने में किसानों की सहायता करना।

2. उच्च फसल उत्पादकता के लिए खाद्य उत्पादन प्रणालियों को गहन बनाना होगा और प्रयोगों में व खेतों में ली जाने वाली उपजों के अंतरालों को पाटना होगा। इसके लिए समेकित फसल नाशकजीव प्रबंध, समेकित पोषक तत्व प्रबंध, गुणवत्तापूर्ण निवेशों की आपूर्ति तथा कृषकों के प्रशिक्षण जैसी प्रौद्योगिकियों को बढ़ावा देने की आवश्यकता होगी। जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूलन के लिए पादप प्रजनन संबंधी प्रयासों को और भी गहन बनाया जाना चाहिए।

3. हिमनदों के पिघलने तथा वर्षा की परिवर्तनशील प्रवृत्ति में होने वाली वृद्धि को ध्यान में रखते हुए भूमि तथा जल प्रबंध में सुधार करना होगा, संसाधन संरक्षण संबंधी प्रौद्योगिकियों को बढ़ावा देना पड़ेगा तथा उन्हें अपनाए जाने के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन देना होगा।

4. मृदा पुनर्स्थापन, कार्बनिक खादों के अधिक उपयोग और न्यूनतम जुताई के द्वारा मृदा में कार्बन प्रच्छादन (सीक्वेस्ट्रेशन), पशुओं की खुराक के उन्नत प्रबंध, कृषि यंत्रों में ऊर्जा के दक्ष उपयोग तथा पवन और सौर ऊर्जा के अधिक उपयोग को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

5. अपनाए जाने के लिए उपलब्ध विभिन्न रणनीतियों की जैव–भौतिकीय और आर्थिक क्षमता के मूल्यांकन सहित वैश्विक जलवायु परिवर्तन संबंधी मूल्यांकनों में अनुकूलन तथा क्षमता निर्माण

के लिए वित्तीय सहायता और प्रौद्योगिकियां उपलब्ध कराने की दृष्टि से उपयुक्त नीतियां बनानी होंगी और क्षेत्रीय सहयोग का निर्माण करना होगा।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के निदेशक डॉ. हरिशंकर गुप्त ने 'जलवायु परिवर्तन तथा अजैविक प्रतिबलों के प्रति अनुकूलन हेतु फसलों का आनुवंशिक सुधार' विषय पर अपना प्रस्तुतीकरण दिया। अपने शोध पत्र में उन्होंने आनुवंशिक सुधार संबंधी रणनीतियों पर गहन विचार प्रस्तुत किए जिसमें परंपरागत और आधुनिक आण्विक प्रजनन की तकनीकें भी सम्मिलित थीं। डॉ. गुप्त ने निम्नलिखित मुख्य मुद्दों पर विशेष बल दियाः

1. अधिक तापमान और कार्बन डाइऑक्साइड के उच्च स्तरों के कारण पौधों में उत्स्वेदन (ट्रांसपीरेशन) तथा श्वसन क्षति में वृद्धि हुई जिससे फसलों की उपज में कमी आ रही है, कीटों व फसलों के नाशकजीवों द्वारा होने वाली क्षति बढ़ रही है तथा फसल कैलेण्डर में बदलाव आ रहा है।

2. फसलों के आनुवंशिक सुधार को इस प्रकार पुनर्गठित किया जाना चाहिए कि इससे देश की प्रमुख फसलों में विभिन्न प्रकार के अजैविक प्रतिबलों के कारण उत्पादकता वृद्धि में आए ठहराव को समाप्त किया जा सके और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने के लिए अनुकूल युक्तियों को अपनाया जा सके। निवेश उपयोग की दक्षता बढ़ाने के लिए नई किस्मों का प्रजनन किया जाना चाहिए और ये किस्में ऐसी होनी चाहिए जो सूखा तथा जल–भराव जैसी नाजुक पारिस्थितिक प्रणालियों का सामना करने में सक्षम हों। मार्कर सहायी प्रजनन, जुताई/पारिस्थितिक अनुकूल जुताई और बेहतर अनुकूलन के लिए वन्य प्रजातियों से प्राप्त बाहरी जीनों के उपयोग जैसी विधियों को अपनाया जाना चाहिए।

3. प्रतिकूल पर्यावरण के लिए उपयुक्त जीनप्ररूपों के विकास हेतु पादप कार्यिकी प्रक्रियाओं को बेहतर ढंग से समझने की आवश्यकता है। पौधे के गुणप्ररूपों में बदलाव; जैसे– वितान तापमान में कमी लाना तथा झिल्ली क्षति सूचकांक को सुधारना ऐसे भरोसेमंद उपाय हैं जिन्हें अधिक तापमान तथा कम नमी वाली स्थितियों से निपटने के लिए अपनाया जा सकता है।

4. सूखा (हार्डी जीन), जलमग्नता (सब–1) और लवणता (ots A और B) के लिए अब से पूर्व पहचाने गए जीनों को वर्तमान किस्मों में हस्तांतरित करने की आवश्यकता है, ताकि नाजुक पर्यावरण के प्रति किस्मों को बेहतर ढंग से अनुकूल रूप में ढाला जा सके।

5. अत्यधिक तापमान को सहने के लिए एचडी 2802, पीबीडब्ल्यू 892, पीबीएन 142, डब्ल्यूएच 730 जैसे गेहूं के जीनप्ररूप विकसित किए गए हैं तथा क्षेत्र विशिष्ट विभिन्न किस्में जैसे

उत्तर पश्चिमी मैदानों के लिए राज 3765, उत्तर पूर्वी मैदानों के लिए डीबीडब्ल्यू 14 और उत्तर पूर्वी तथा पश्चिमी मैदानों के लिए पीबीडब्ल्यू 373 जारी की गई हैं। इसी प्रकार, जलवायु संबंधी विभिन्न परिस्थितियों के प्रति अनुकूल चावल की अनेक किस्में भी जारी की गई हैं।

6. भारत की अधिकांश दलहनी फसलों को अजैविक प्रतिबलों का सामना करना पड़ रहा था जिससे उनकी उपज में 15–30 प्रतिशत तक की क्षति होती थी। अतः सूखे, लवणता तथा शीत के प्रति सहिष्णुता लाने के लिए इन फसलों में डीआरईबी जीन के उपयोग की आवश्यकता है।

7. भारत में मक्का की फसल को फूल आने की अवस्था में सूखे का और अगेती वानस्पतिक बढ़वार की अवस्था में जल–ठहराव जैसी प्रतिकूल स्थितियों का सामना करना पड़ता था। आने वाले दशकों में जलवायु संबंधी समस्याओं के बढ़ने के कारण इन प्रतिबलों के और अधिक गहन होने की संभावना है। अतः हॉट स्पॉट क्षेत्रों में प्रजनन कार्यक्रमों के लिए सर्वश्रेष्ठ जननद्रव्य का उपयोग करने, मार्कर सहायी पुनरावर्ती चयन को बढ़ावा देने, पराजीनियों को विकसित करने, 'सिमिट' से प्राप्त किए गए श्रेष्ठ डीटी वंशक्रमों का उपयोग शुरू करने, सहायक विशेषकों के दोहन और घटक विशेषकों के लिए क्यूटीएलएस मानचित्रण जैसी रणनीतियों का उपयोग करने की आवश्यकता है।

डॉ. गुप्त ने अपने शोध पत्र का समापन यह कहते हुए किया कि एक सशक्त अनुसंधान एवं नीतिगत सहायता की आवश्यकता है क्योंकि प्रतिकूल स्थितियों के अनुरूप फसलों को ढालने तथा प्रतिकूल स्थितियों से निपटने के लिए किए जाने वाले उपायों की लागत बढ़ने की संभावना है, लेकिन हमें यह भी ध्यान में रखना होगा कि यदि इस दिशा में हमने कुछ नहीं किया तो इसकी हमें बहुत बड़ी कीमत चुकानी होगी।

डॉ. राजेन्द्र सिंह परोदा ने 'एशिया–प्रशांत में कृषि अनुसंधान के लिए वैश्विक जलवायु परिवर्तन के प्रभावों' पर दिए गए अपने प्रस्तुतीकरण में इस तथ्य पर प्रकाश डाला कि एशिया में विश्व की आधे से अधिक जनसंख्या निवास करती है, जबकि यहां वैश्विक भूमि का कुल एक–तिहाई भाग ही उपलब्ध है। तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या और अर्थव्यवस्था में परिवर्तन के कारण भविष्य में इस क्षेत्र में खाद्यान्न की और अधिक आवश्यकता होगी तथा वर्तमान मांग की तुलना में यह मांग 2020 तक 30–50 प्रतिशत अधिक हो जाएगी। उसी अथवा कम भूमि पर और घटिया स्तर के अन्य प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करते हुए इतना खाद्यान्न उत्पन्न करना वैज्ञानिक समुदाय के समक्ष एक बहुत बड़ी चुनौती है। एशिया–प्रशांत क्षेत्र के अधिकांश देशों में परिवर्तित होते हुए पर्यावरण और जलवायु संबंधी परिदृश्य तथा निवेशों की बढ़ती हुई लागत के संदर्भ में यह चुनौती और भी गंभीर हो जाएगी।

कृषि पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को रेखांकित करते हुए डॉ. परोदा ने बताया कि एशिया के अधिकांश विकासशील देशों में जलवायु परिवर्तन के कारण वहां का टिकाऊ विकास प्रभावित हो रहा है तथा तेजी से बढ़ते हुए शहरीकरण, औद्योगीकरण व आर्थिक विकास के चलते प्राकृतिक संसाधनों और पर्यावरण पर पड़ने वाले दबाव के कारण यह क्रिया और भी जटिल होती जा रही है। कृषि पर जलवायु परितर्वन का प्रभाव अब एक वास्तविकता बन गया है और यदि अनुकूलन व निपटने संबंधी पर्याप्त रणनीतियां नहीं अपनाई गईं तो निकट भविष्य में एशिया में खाद्य असुरक्षा उत्पन्न होने तथा आजीविका के अवसरों में बहुत कमी होने का खतरा पैदा हो जाएगा।

ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में वृद्धि के परिणामस्वरूप 1906 से 2005 की अवधि के दौरान वैश्विक तापमान में 0.74° से. की वृद्धि हुई है। ऐसा अनुमान है कि इस शताब्दी के अंत तक तापमान में 2 से 4.5° से. तक वृद्धि हो जाएगी। ऐसी अपेक्षा है कि भविष्य में उष्णकटिबंधीय चक्रवात और अधिक गहन होंगे, पवन का वेग काफी बढ़ जाएगा तथा भारी वर्षा होगी। हिमालय के हिमनदों तथा हिमाच्छादन के सिकुड़ने की संभावना है। यह भी संभावना है कि तेज गर्मी पड़ेगी, लू या गर्म हवाएं अधिक तीव्र होंगी तथा भारी वर्षा जैसी घटनाएं जारी रहेंगी और भविष्य में इनकी आवर्तता बढ़ेगी। ऊंचाई वाले स्थानों पर अधिक वर्षा होने की संभावना है, जबकि अधिकांश उपोष्णीय क्षेत्रों में इसके कम होने की संभावना है। साथ ही, इस शताब्दी के अंत तक समुद्रतल के 0.18 से 0.59 मी. तक ऊपर उठने की संभावना है। मध्य, दक्षिणी, पूर्वी तथा दक्षिण पूर्वी एशिया में, विशेषकर बड़े नदी थालों में, मीठे जल की उपलब्धता के घट जाने की संभावना है और ऐसा जलवायु परिवर्तन के कारण होगा जो 2050 तक 100 करोड़ से अधिक लोगों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करेगा।

जलवायु परिवर्तन फसलों, मृदाओं, पशुधन और नाशकजीवों पर प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से प्रभावित कर रहा है जिससे विश्व की खाद्य सुरक्षा प्रतिकूल रूप से प्रभावित हो रही है। ताप संबंधी प्रतिबल में वृद्धि, चरागाहों की कम उत्पादकता और पशुओं के रोगों में होने वाली संभावित वृद्धि के परिणामस्वरूप पशुधन उत्पादकता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है। समुद्र की सतह के तापमान और अम्लता में वृद्धि से भी समुद्री प्रजातियों के वितरण और उनके उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की पर्याप्त संभावना है।

डॉ. परोदा ने बताया कि 'अपारी' एशिया–प्रशांत क्षेत्र में कृषि अनुसंधान के लिए क्षेत्रीय सहयोग को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है और इसने उभरते हुए मुद्दों जैसे एशिया–प्रशांत क्षेत्र में कृषि अनुसंधान व विकास संबंधी समस्याओं, पर विशेषज्ञों के परामर्शों की अनेक श्रृंखलाओं का आयोजन किया है। इस प्रयास में 'अपारी' द्वारा 2006 में आयोजित

'अनुसंधान आवश्यकता मूल्यांकन' पर विशेषज्ञों के परामर्श के दौरान 'खाद्य संकट' तथा 'जलवायु परिवर्तन' को मुख्य विषयों के रूप में पहचाना गया। तदनुसार एशिया–प्रशांत क्षेत्र में कृषि अनुसंधान के लिए जलवायु परिवर्तन तथा इसके प्रभावों से जुड़े मुद्दे पर नवम्बर 2008 में त्सुकुबा (जापान) में 'अपारी' और 'जेआईआरसीएएस' द्वारा संयुक्त रूप से आयोजित अंतर्राष्ट्रीय सिम्पोज़ियम में गहन विचार–विमर्श किया गया। इसमें एनएआरएस, सीजीआईएआर, आईएआरसीएस, जीएफएआर, एसीआईएआर, जेआईआरसीएएस, एआरआईएस, विश्वविद्यालयों तथा क्षेत्रीय निकायों से आए प्रतिभागियों ने भाग लिया। जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में कृषि संबंधी अनुकूलन पर 'त्सुकुबा घोषणा' में जलवायु परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए कृषि के अनुकूलन संबंधी अनुसंधान प्राथमिकताओं का निर्धारण किया गया। इस घोषणा की सिफारिशों को प्रमुख पणधारियों (स्टेकहोल्डर्स) के बीच व्यापक रूप से वितरित किया गया।

परिचर्चा

इस तथ्य पर व्यापक सहमति हुई कि भारतीय कृषि चौराहे पर खड़ी है। इसे पर्यावरण, सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से टिकाऊ बनाए रखते हुए देश की बढ़ती हुई जनसंख्या को भोजन उपलब्ध कराने के लिए हमें नए तरीके तलाशने होंगे। भारत में कृषि के क्षेत्र में पिछली उपलब्धियां उल्लेखनीय रही हैं। तथापि, कृषि संबंधी कुछ वर्तमान कार्य भावी कृषि के लिए नए संकट उत्पन्न कर रहे हैं। भारत जो प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध देश होने के साथ–साथ सशक्त अनुसंधान आधार तथा उच्च प्रशिक्षित व्यवसायविदों से सम्पन्न है और इसे जल, उर्वरकों, श्रम तथा ऊर्जा उपयोग की दक्षता बढ़ाने; मृदा व पारिस्थितिक प्रणालियों को सुधारने; सामाजिक प्रतिस्थितित्व लाने; अपघटित होती हुई कृषि पारिस्थितिक प्रणालियों को सुधारने; और विभिन्न उपायों के माध्यम से कृषकों की आय के वैकल्पिक स्रोत सृजित करने होंगे जिसमें कार्बन व्यापार भी सम्मिलित है। प्राकृतिक संसाधनों को मात्र अपने उपभोग की वस्तु न मानते हुए हमें अपनी आने वाली पीढ़ियों के लिए इनमें सुधार लाना होगा और इन्हें बचाकर रखना होगा।

जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूलन तथा इससे निपटने की रणनीतियों में संरक्षण कृषि; अजैविक (सूखा, बाढ़, तापमान, लवणता आदि) प्रतिबल सहिष्णु श्रेष्ठ जननद्रव्य का विकास; प्रौद्योगिकियों का स्थान विशिष्ट परिशोधन; मौसम से संबंधित मूल्यवर्धित परामर्श सेवाओं का प्रसार; जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूलन हेतु आधुनिक विज्ञान से युक्त देसी/परंपरागत ज्ञान का समेकन; तथा फसल बीमा, बीज बैंकों जैसे जोखिम प्रबंधन संबंधी सामाजिक सुरक्षा–संजाल का विकास जैसे पहलू सम्मिलित हैं। वर्तमान में कृषि से संबंधित कुछ नीति–गत उपाय ऐसे हैं जिन पर पुनर्विचार की आवश्यकता है। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण हैं : बिजली पर अनुदान देने से भूमिगत जल में अनियंत्रित ह्रास हुआ है और लगभग मुफ्त जल उपलब्ध कराने की नीति के

कारण आवश्यकता से अधिक सिंचाई हो रही है, अनुदान के कारण उर्वरकों का असंतुलित उपयोग हो रहा है तथा चरागाहों और जलसंभरों जैसे सामान्य संसाधनों के संरक्षण के लिए प्रोत्साहनों का कोई प्रावधान नहीं है, कृषि जैवविविधता के स्वस्थाने संरक्षण पर भी प्रावधानों की कमी है तथा संरक्षण कृषि पर विशेष ध्यान नहीं दिया जा रहा है। कुल मिलाकर इसका तात्पर्य यह है कि जो किसान आधुनिक गहन कृषि के स्थान पर संसाधन संरक्षण वाली कृषि को अपनाते हैं उन्हें ऐसा बिना किसी अतिरिक्त परिवर्तन लागत के करना होगा। दीर्घावधि में इसका तात्पर्य यह होगा कि टिकाऊ कृषि व्यापक रूप से फैल नहीं पाएगी और यह छुटपुट/स्थानीय सफलताओं से अधिक और कुछ नहीं दे पाएगी। अतः टिकाऊ उत्पादन प्रणालियों को, विशेषकर जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में बढ़ावा देने के लिए नीतियों, प्रौद्योगिकियों तथा खेती संबंधी प्रणालियों में परस्पर ताल–मेल बैठाने की आवश्यकता है। चूंकि उत्पादन प्रणालियों व प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता तथा आजीविका के लिए निर्धनों की प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भरता के बीच व्यापक विविधता है, अतः स्थानीय विशिष्ट स्थितियों के लिए उपयुक्त ऐसा विविध दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है जिससे परंपरागत ज्ञान और आधुनिक प्रौद्योगिकियों का मेल करते हुए एक समेकित दृष्टिकोण को प्रोत्साहित किया जा सके। जलवायु परिवर्तन वैश्विक स्तर की एक चुनौती है, अतः इससे निपटने के लिए विश्वव्यापी ज्ञान का उपयोग करने के साथ–साथ स्थान विशिष्ट समस्याओं से निपटने के लिए संसाधनों का उपयोग करना अधिक सार्थक सिद्ध होगा। तथापि, मुख्य कार्रवाई जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय नीति को लागू करने पर केंद्रित करनी होगी, जिसमें अभी कुछ ढील दी जा रही है। सभी वर्तमान प्रयासों का लक्ष्य सकल टिकाऊ कृषि विकास के लिए ऐसी रणनीति विकसित करने का होना चाहिए जिससे राष्ट्रीय खाद्य तथा पोषणिक सुरक्षा सुनिश्चित हो सके। इसके लिए भली प्रकार समन्वित अंतर–विभागीय/अंतर–मंत्रालयीन दृष्टिकोण की आवश्यकता होगी जिसमें सभी पणधारियों की भागीदारी सुनिश्चित होनी चाहिए।

अनुशंसाएं

इस विचारोत्तेजक कार्यशाला में निम्नलिखित विशिष्ट अनुशंसाएं की गईं :

1. वर्तमान जनसंख्या वृद्धि के कारण भविष्य में भारत में प्रति व्यक्ति भूमि की उपलब्धता में काफी कमी आने की संभावना है (2050 तक लगभग 0.09 हैक्टर)। इसके साथ ही खाद्यान्न की बढ़ती मांग की चुनौती से निपटने के लिए कृषि अनुसंधान एवं विकास पर संसाधनों का आवंटन दुगना किए जाने की आवश्यकता है, ताकि सिंचित क्षेत्र बढ़ाया जा सके, जल तथा उर्वरक उपयोग की दक्षता में सुधार हो सके और अपघटित होती हमारी भूमि का स्वास्थ्य

बेहतर बनाया जा सके। अनुसंधान एवं विकास के इन पहलुओं पर तत्काल कार्रवाई करने की आवश्यकता है, ताकि जलवायु परिवर्तन और खाद्य सुरक्षा से जुड़ी उभरती हुई चुनौतियों से निपटा जा सके।

2. मौसम संबंधी उतार–चढ़ाव बढ़ रहे हैं जिसका भारतीय कृषि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है और खेती में समस्याएं अधिक गंभीर हो सकती हैं। इस संदर्भ में विशेष रूप से बढ़ते हुए तापमान, असामान्य वर्षा तथा ऊंचे उठते हुए समुद्र तल जैसे पहलुओं की विशिष्ट भूमिका है। ऐसा अनुमान है कि यदि समय पर सुधार संबंधी उपाय नहीं किए गए तो 2100 तक अनाज उत्पादन में 10 से 40 प्रतिशत के बीच कमी आ जाएगी। अतः जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूलन को सभी पणधारियों द्वारा उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

3. जलवायु परिवर्तन की स्थिति में 'मिलेनियम विकास' के लक्ष्यों को प्राप्त करना, विशेषकर दक्षिण एशिया में और अधिक कठिन हो जाएगा क्योंकि यहां निर्धनता और कुपोषण अधिक हैं। ऐसे परिदृश्य में 'मिलेनियम विकास' के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए वैश्विक/क्षेत्रीय अनुसंधान साझेदारियों की आवश्यकता होगी तथा सूचना एवं अनुभवों का आदान–प्रदान करना और अधिक महत्वपूर्ण होगा। इस संदर्भ में एशिया–पेसेफिक एसोसिएशन ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्च इंस्टीट्यूशंस (अपारी), ग्लोबल फोरम ऑन एग्रीकल्चरल रिसर्च (जीएफएआर), अंतर्राष्ट्रीय सीजी केन्द्र, खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) और जापान इंटरनेशनल रिसर्च सैंटर फॉर एग्रीकल्चरल साइंसिस (जेआईआरसीएएस) जैसी प्रगत अनुसंधान संस्थाओं को अनुसंधान भागीदारी तथा क्षमता निर्माण के लिए सभी पणधारियों को एक साथ लाने में प्रभावी भूमिका निभानी होगी।

4. जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए अपनाई जाने वाली रणनीति में मुख्यतः परिवर्तित होते पर्यावरण के प्रति अनुकूलन (नए जीनप्ररूप) और संसाधनों (जल, भूमि और ऊर्जा) के साथ–साथ मौसम प्रबंध संबंधी सेवाओं पर विशेष ध्यान देना होगा। इसके साथ ही इस स्थिति से निपटने की दीर्घावधि रणनीति में जलवायु परिवर्तन लाने वाली ग्रीन हाउस गैसों जैसे घटकों के प्रभाव को समाप्त करने का उद्‌देश्य भी निहित किया जाना चाहिए।

5. प्रतिकूल जलवायु के प्रति अनुकूलन तथा चुनौतियों से निपटने की रणनीतियों के लिए सशक्त अनुसंधान एवं विकास संबंधी सहायता के साथ–साथ उचित वित्तीय और नीतिगत सहायता की भी आवश्यकता होगी। कृषि प्रणालियों की विविधता, हरित क्रांति से प्राप्त किए गए अनुभव और नई खोजें उन प्रक्रियाओं को समझने की कुंजी हैं जिनसे प्रतिकूल जलवायु के प्रति अनुकूलन और कठिन स्थितियों से निपटने के कार्य में तेजी लाई जा सकती है। अधिकांशतः इन रणनीतियों में नई पादप किस्मों को विकसित करना, उचित भूमि

उपयोग नियोजन तथा फसलों के कारगर प्रबंध के साथ–साथ उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों (जैव–विविधता, भूमि, जल, ऊर्जा आदि) के उचित प्रबंध जैसे पहलुओं को उचित स्थान दिया जाना चाहिए।

6. पादप प्रजनन की परंपरागत विधियों तथा जैवप्रौद्योगिकीय युक्तियों के माध्यम से किया जाने वाला फसल सुधार इस प्रकार लक्षित होना चाहिए कि नई किस्में सूखा, ताप, लवणता, बाढ़ आदि जैसी प्रतिकूल स्थितियों को बेहतर ढंग से सह सकने में समर्थ हों। ऐसा अगेतीपन के लिए प्रजनन करके, नाजुक पारिस्थितिक प्रणालियों के प्रति अनुकूलन, पौधों की बनावट में सुधार करके तथा नाशकजीवों के प्रति और अधिक सहिष्णुता उत्पन्न करके किया जा सकता है। इस रणनीति का लक्ष्य जीन पिरामिडिंग, C_3 पौधों को C_4 पौधों में परिवर्तित करना, जैविक और अजैविक दोनों प्रकार के प्रतिबलों के विरुद्ध बहु–प्रतिरोधिता का निर्माण करना आदि होना चाहिए।

7. हमारी कृषि योग्य भूमि के लगभग दो–तिहाई भाग में बारानी कृषि की जाती है जहां जल एक अत्यधिक दुर्लभ संसाधन है। अतः स्प्रिंकलर सिंचाई, ड्रिप सिंचाई, प्लास्टिक पलवार के उपयोग तथा जल संग्रहण (छोटी फार्म जोतों के आसपास बांध बनाकर) जैसी तकनीकों के माध्यम से जल उपयोग की दक्षता बढ़ाना प्रस्तावित अनुकूलन रणनीति का अनिवार्य अंग होना चाहिए। ऐसा अनुमान है कि खेत में बांध बनाने तथा भूमि को समतल करने जैसी साधारण विधियों को अपनाकर बहकर व्यर्थ हो जाने वाले जल का लगभग 11.37 प्रतिशत भाग उपयोग में लाया जा सकता है और इससे बारानी क्षेत्र के लगभग 2.50 करोड़ हैक्टर क्षेत्र में कम से कम एक फसल सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। तथापि, इसके लिए उचित तकनीकी ज्ञान उपलब्ध कराने की आवश्यकता होगी। ऐसा उस उत्तरदायी व कुशल विस्तार प्रणाली के माध्यम से किया जा सकता है जिसमें सार्वजनिक तथा निजी दोनों संस्थाओं की भागीदारी हो। विशेषकर, ग्रामीण क्षेत्रों में सक्रिय स्वयंसेवी संगठनों को इसमें मुख्य भूमिका निभानी होगी।

8. जलवायु परिवर्तन के प्रतिकूल प्रभावों से निपटने तथा फसलों को परिवर्तित जलवायु के अनुकूल ढालने के उद्देश्य से अपनाई जाने वाली रणनीति को अपनाने के लिए भूमि तथा जल जैसे प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में अनुसंधान एवं विकास की भूमिका का महत्व अधिक है। ऐसी संरक्षित कृषि जिसमें मृदा में न्यूनतम व्यवधान हो, जिसके द्वारा वानस्पतिक आच्छादन बढ़ता हो और फसल क्रमों में विविधीकरण हो, पर्याप्त क्षमतावान है। तथापि, नई–नई खोजों को अपनाने के लिए उचित नीति निर्धारित करने, पर्याप्त धन उपलब्ध कराने और संस्थागत सहायता की आवश्यकता होगी।

9. मृदा उर्वरता में सुधार तथा पारिस्थितिक प्रणाली की उत्पादक क्षमता का विकास मृदा तथा वनस्पति, दोनों में, कार्बन पूलों के बढ़ने के संदर्भ में किया जाना चाहिए। कार्बन की ट्रेडिंग जो विकसित देशों में अन्य फार्म जिंसों के समान हो रही है, कृषकों की आय का एक वैकल्पिक साधन बन सकती है। तथापि, संसाधन संरक्षण संबंधी प्रौद्योगिकियों को अपनाने/पर्यावरणीय सेवाओं को लागू करने के लिए छोटे और अल्प संसाधन संपन्न किसानों को विशेष प्रोत्साहन उपलब्ध कराने की आवश्यकता है क्योंकि कुल मिलाकर ये प्रोत्साहन पूरे राष्ट्र के हित में हैं। इसके लिए हमें ऐसे परिवर्तन के माध्यम से सीखने की रणनीति अपनाने की आवश्यकता है जिससे हमारी मृदा तथा पारिस्थितिक प्रणाली में सुधार हो तथा कृषि में प्रतिस्थितित्व (रेजिलिएंस) आ सके।

10. मृदा स्वास्थ्य को सुधारने तथा फसलों की उपज बढ़ाने के लिए मृदा कार्बन प्रच्छादन एक प्रभावी रणनीति है। तथापि, भारत की अधिकांश उपराऊं भूमियों में उपलब्ध मृदा कार्बनिक कार्बन मात्र लगभग 0.2–0.5 प्रतिशत है, जो थ्रैशहोल्ड स्तर (लगभग 1.1 प्रतिशत) से बहुत कम है। फसल अपशिष्टों तथा पशु खाद से मृदा को सुधारने जैसे अनुप्रयोगों से बारानी क्षेत्रों में मृदा में उपलब्ध कार्बनिक कार्बन के पूल में उल्लेखनीय रूप से वृद्धि हो सकती है, अतः इसे बढ़ावा दिया जाना चाहिए। गेहूं और चावल के भूसे को जलाने की प्रथा को रोका जाना चाहिए/इस पर प्रतिबंध लगाया जाना चाहिए और मृदा स्वास्थ्य को सुधारने तथा फसल की उत्पादकता बढ़ाने के लिए कार्बनिक पुनश्चक्रण अपनाने हेतु किसानों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

11. कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा प्रणाली को इस प्रकार प्रभावी ढंग से पुनरअभिमुख (रिओरिएंट) किया जाना चाहिए कि इससे प्राकृतिक संसाधनों के अपघटन और जलवायु परितर्वन की उभरती हुई चुनौतियों से निपटा जा सके। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भारतीय कृषि के समक्ष उत्पन्न इन नई चुनौतियों से निपटने के लिए कृषि अनुसंधान एवं विकास पर धनराशि का आवंटन **दुगना** करने की तत्काल आवश्यकता है। अनुसंधान एवं विकास के लिए भविष्य में धन का आबंटन करते समय कृषि संबंधी बेमेल नीतियों से बचना चाहिए।

डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन पंजीकरण पटल पर

डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन संगोष्ठी के उपाध्यक्ष डॉ. राजेन्द्र सिंह परोदा के साथ अध्यक्षता करते हुए

डॉ. राजेन्द्र सिंह परोदा श्रोताओं को संबोधित करते हुए

प्रो. रतन लाल अपना प्रस्तुतीकरण देते हुए

डॉ. जे. एस. सामरा अपना शोध पत्र प्रस्तुत करते हुए

डॉ. आई. पी. एब्रौल श्रोताओं को संबोधित करते हुए

डॉ. पी. के. अग्रवाल अपना शोध पत्र प्रस्तुत करते हुए

डॉ. बी. आर. शर्मा परिचर्चा के दौरान बोलते हुए

डॉ. आर. पी. सिंह परिचर्चा के दौरान बोलते हुए

डॉ. हरी शंकर गुप्त परिचर्चा के दौरान टिप्पणी करते हुए

संगोष्ठी के भागीदार

Progress Through Science

ट्रस्ट फॉर एडवांसमेंट ऑफ एग्रीकल्चरल साइंसिस
(टास)

'टास' के प्रकाशनों की सूची

'टास' द्वारा आयोजित विभिन्न क्रियाकलापों के आधार पर निम्नलिखित प्रकाशन/रिपोर्टें प्रकाशित की गई :

1. रेगुलेटरी मेजर्स फॉर यूटिलाइजिंग बायोटेक्नोलॉजिकल डेवलपमेंट्स इन डिफरेंट कंट्रीस – डॉ. मंजू शर्मा, सचिव, जैवप्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार द्वारा 17 अक्तूबर 2003 को दिया गया प्रथम स्थापना दिवस व्याख्यान
2. इनेब्लिंग रेगुलेटरी मैकेनिज्म्स फॉर रिलीज़ ऑफ ट्रांसजेनिक क्रॉप्स – विचारोत्तेजक सत्र, 18 अक्तूबर 2003
3. चैलेंजिज इन डेवलपिंग न्यूट्रिशनली इन्हांस्ड स्ट्रेस टोलरेंट जर्मप्लाज्म – डॉ. एस. के. वासल, लब्धप्रतिष्ठ वैज्ञानिक, 'सीमिट', मैक्सिको द्वारा 15 जनवरी 2004 को दिया गया विशेष व्याख्यान
4. रोल ऑफ साइंस एंड सोसायटी टुवर्ड्स प्लांट जेनेटिक रिसोर्सिस मैनेजमेंट – इमर्जिंग इश्यूज – विचारोत्तेजक सत्र, 7–8 जनवरी 2005, मुख्य मुद्दे और अनुशंसाएं
5. रोल ऑफ इन्फॉरमेशन, कम्युनिकेशन टैक्नालॉजी इन टेकिंग साइंटिफिक नॉलेज/टैक्नोलॉजिस टू द एंड यूजर्स – राष्ट्रीय कार्यशाला, 10–11 जनवरी 2005, अनुशंसाएं
6. पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप इन एग्रीकल्चरल बायोटैक्नोलॉजी – द्वितीय स्थापना दिवस व्याख्यान, व्याख्यानदाता – डॉ. गुरदेव एस. खुश, एडजंक्ट प्रोफेसर, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया, डेविस, यूएसए, 17 अक्तूबर 2005
7. कृषि में नेतृत्व के लिए दिया गया प्रथम डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन पुरस्कार, 15 मार्च 2005 – मुख्य मुद्दे
8. फार्मर – लेड इनोवेशंस फॉर इन्क्रीज्ड प्रोडक्टिविटी, वैल्यू एडीशन एंड इनकम जेनरेशन – विचारोत्तेजक सत्र, 17 अक्तूबर 2005 – मुख्य मुद्दे तथा अनुशंसाएं
9. स्ट्रेटजी फॉर इन्क्रीसिंग प्रोडक्टिविटी ग्रोथ रेट इन एग्रीकल्चरल – डॉ. आर. एस. परोदा द्वारा अगस्त 2006 में प्रस्तुत रणनीतिपरक पत्र
10. कृषि में नेतृत्व के लिए द्वितीय डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन पुरस्कार, 9 अक्तूबर 2006 – एक संक्षिप्त रिपोर्ट
11. फार्मर–लैड इनोवेशंस टुवर्ड्स प्लांट वैराइटी इम्प्रूवमेंट, कंजर्वेशन एंड प्रोटेक्टिंग फार्मर्स राइट्स, 12–13 नवम्बर 2006, राष्ट्रीय संवाद, मुख्य मुद्दे तथा अनुशंसाएं
12. "मॉडल्स ऑफ पब्लिक–प्राइवेट पार्टनरशिप इन एग्रीकल्चरल बायोटैक्नोलॉजी" पर 7 अप्रैल 2007 को आयोजित विचारोत्तेजक सत्र – मुख्य मुद्दे तथा अनुशंसाएं
13. 'फार्मर लैड इनोवेशंस फार सस्टेनेबल एग्रीकल्चर' पर 14–15 दिसम्बर 2007 को आयोजित संगोष्ठी – कार्यवृत्त
14. भारत में मानवीय राष्ट्रीय सुरक्षा तथा कुक्कुट क्षेत्र के विकास हेतु गुणवत्तापूर्ण प्रोटीन वाली मक्का पर राष्ट्रीय संगोष्ठी तथा कृषि में नेतृत्व के लिए तृतीय डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन पुरस्कार का प्रदानीकरण, 3 मई 2008 – कार्यवृत्त तथा मुख्य मुद्दे
15. नीति परिवर्तन, संस्थागत नवाचार और विज्ञान के माध्यम से विश्व खाद्य व कृषि संकट से निपटना – डॉ. ज्वाचिम वॉन ब्राउन, डायरेक्टर जनरल, इंटरनेशनल फूड पॉलिसी रिसर्च इंस्टीट्यूट, वाशिंगटन द्वारा 6 मार्च 2009 को दिया गया चतुर्थ स्थापना दिवस व्याख्यान
16. 'भारतीय कृषि के समक्ष उभरती चुनौतियां – भावी पथ' विषय पर विचारोत्तेजक सत्र, 6 मार्च 2009, कार्यवृत्त तथा अनुशंसाएं
17. फार्म पशु आनुवंशिक संसाधनों के संरक्षण के लिए रणनीति पर विचारोत्तेजक कार्यशाला, 10–12 अप्रैल 2009 – संक्षिप्त विवरण।
18. मिलियंस फैड – प्रोवेन सक्सेसिस इन एग्रीकल्चरल डेवलपमेंट, 19 जनवरी 2010 (इफ्प्री, आईएआरआई तथा टास द्वारा संयुक्त रूप से आयोजित)
19. 'जलवायु परिवर्तन, मृदा गुणवत्ता एवं खाद्य सुरक्षा' पर विचारोत्तेजक कार्यशाला, 11 अगस्त 2009 – कार्यवृत्त एवं अनुशंसाएं

taas
Progress Through Science

ट्रस्ट फॉर एडवांसमेंट ऑफ एग्रीकल्चरल साइंसिस (टास)
एवन्यू II, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली-110012

फोन: 011-65437870 फैक्स: 011-25843243
ई-मेल: taasiari@yahoo.co.in वेबसाईट: www.taas.in